समयसार, कलश छठा, श्लोकार्थ फिर से थोड़ा। '**इस आत्मा को अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना (श्रद्धान करना)**' भगवान आत्मा को अन्य द्रव्यों से — कर्म, शरीर, वाणी आदि सब द्रव्यों से भिन्न देखना, क्योंकि वह भिन्न द्रव्य है। आहाहा! **श्रद्धान करना...** अन्य द्रव्यों से भिन्न करके पूर्णज्ञानघन आत्मा की श्रद्धा करना **ही नियम से**

सम्यग्दर्शन है,.... वह निश्चय से सम्यग्दर्शन है-सत्य सम्यग्दर्शन यह है — धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला पगथिया — सोपान। आहाहा! इस आत्मा को नव तत्त्वों के विकल्पों से और परद्रव्यों से भिन्न अन्दर में देखना। अन्दर में (परद्रव्यों से) भिन्न करके उसे देखना, भिन्न करके उसकी श्रद्धा करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! है?

यह आत्मा कैसा है? **(यह आत्मा) अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला है।** आहाहा! आत्मा.... पहले प्रमाण का विषय बतलाते हैं, कि जो आत्मा है, वह अपने अनन्त गुण और अपनी जो विकारी आदि पर्यायें, उनमें व्यापनेवाला है। क्या कहा? जो आत्मा — वस्तु.... अभी सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? — वह बाद में लेंगे। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का ध्येय क्या है? शुद्धनय का विषय क्या है? कि सम्यग्दर्शन का विषय — वह सब एक ही है। इससे पहले आत्मा अपना द्रव्य, जो वस्तु है, वह अपने अनन्त गुण / शक्ति में व्यापक है, और अपनी पर्याय — विकृत-अविकृत जो अवस्था है, उसमें व्यापक है। धन्नालालजी!

श्रोता : सम्यग्दर्शनवाला आत्मा दूसरा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये नहीं, वह बाद में (कहा जायेगा)। यहाँ निश्चयनय और व्यवहारनय दो प्रमाण है। (यहाँ) पहले प्रमाण का विषय बतलाते हैं। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बताना है। आत्मा तो प्रमाणरूप है परन्तु प्रमाणरूप में अकेला निश्चय का विषय नहीं आता, परन्तु पर्याय का विषय भी आता है, इस कारण यहाँ तो परद्रव्य से भिन्न, शरीर-कर्म से भिन्न, अपने गुण-पर्याय से व्याप्त — ऐसा आत्मा है, बस! उसमें तो ऐसा सिद्ध किया कि अपने गुण और अपनी पर्याय जो विकार हो — मिथ्यात्व हो, राग-द्वेष हो, उस अपने अस्तित्व में आत्मा का व्यापकपना है; कर्म में और शरीर में (आत्मा का) व्यापकपना है — ऐसा नहीं है और कर्म तथा शरीर दूसरी चीज है, वह अपनी पर्याय में व्यापक है — ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो परम सत्य बात है। अभी कभी इसे जँची नहीं, रुचि नहीं। आहाहा!

यह भगवान आत्मा (जो अन्दर वस्तु है) वह, शरीर-कर्म आदि है, उन्हें तो आत्मा स्पर्श करता ही नहीं। कर्म, शरीर, वाणी को तो आत्मा स्पर्श ही नहीं करता, छूता ही नहीं।

आहाहा! तब है कैसा? किसमें? कि अपनी अनन्त शक्ति / गुण है, गुण है जो त्रिकाल वस्तु है न, उसमें गुण / शक्तियाँ रहती हैं या नहीं? वस्तु है, उसका स्वभाव है या नहीं? वस्तु स्वभाववान है, तो उसका कोई स्वभाव है या नहीं? यह स्वभाव जो ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण हैं, वह उसका गुणस्वभाव है, उसमें भी व्याप्त है और उसकी जो विकृत-अविकृत अवस्था — अविकृत अवस्था अस्तित्वगुण आदि की अविकृत अवस्था होती है.... सूक्ष्म है भाई! विषय ही एकदम अलग प्रकार का है! और रागादि-दुःखादि वह विकृत अवस्था है, उन सबमें — द्रव्य-गुण-पर्याय में आत्मा व्यापक है।

यह विकार में व्याप्त है तो अपनी पर्याय है, उसमें व्याप्त है। यह विकार, कर्म से हुआ और कर्म व्यापक होकर यहाँ आया — ऐसा है नहीं। आहाहाहा! पहले तो चौदह ब्रह्माण्ड में आत्मा एक वस्तु है, वह कितने में है और कैसी है? यह बात सिद्ध करते हैं। आहाहा! यह जो अपने अनन्त गुण है - शक्तियाँ हैं — सत् का सत्त्व, वस्तु का स्वभाव, वस्तु का गुण और उसकी वर्तमान पर्याय-अवस्था-हालत.... वह विकारी हो या अविकारी हो; अविकारी अर्थात् संवर-निर्जरा की अविकारी पर्याय अनादि की है, वह यहाँ नहीं, अनादि की नहीं परन्तु उसमें जो विकार होता है तो गुण और विकार में आत्मा व्यापक है, ऐसी वस्तु की चीज पर से भिन्न अपने गुण-पर्याय से सहित बताना, वह प्रमाण का विषय है। अरे! अब ऐसी बात! है?

अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला है.... कल यह कलश-टीका में देखा था परन्तु शब्द यह नहीं आये थे। बाद में देखा, उसमें शब्द आया है। '**व्याप्तुम**' बाद में देखा। फिर नव तत्त्व का कहा था न? परन्तु उसमें ऐसा आया। '**व्याप्तुम्**' अपने गुण-पर्यायसहित है। भाई! पहले इसे मार्ग यथार्थ समझना चाहिए (कि) क्या चीज है.... आहाहा! अनन्त काल से अज्ञान में चार गति चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करता है, वह परिभ्रमण की पर्याय भी इसमें है, उसमें (आत्मा) व्यापक है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणाम भी इसकी पर्याय में है, (उसमें) आत्मा व्याप्त है। वह पर्याय किसी कर्म से हुई है या वह विकारी पर्याय कर्म में जाती है, कर्म में व्यापक होकर जाती है — ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे गुण-पर्याय में व्याप्त रहनेवाला,.... बस, इतनी बात।

अब **'शुद्धनय एकत्वे नियतस्य' शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है....** यह क्या कहा? आहाहाहा! यह वस्तु भगवान आत्मा और इसके अनन्त गुण और इसकी पर्याय में व्याप्त यह आत्मा — यह प्रमाण का विषय (है)। अब प्रमाण के विषय में से शुद्धनय का विषय भिन्न करना है। समझ में आया? वस्तु तो इतनी — अपने में बस, इतनी।

अब शुद्धनय से उसे देखने से **'शुद्धनय एकत्वे नियतस्य'** यह शुद्धनय तो एकत्वपने को दिखाता है। गुणगुणी का भेद और पर्याय का भेद, वह शुद्धनय का विषय नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! समझ में आया? जो अन्तर वस्तु है, अकेला द्रव्य ज्ञायकभाव, वह शुद्धनय उसे बताता है अर्थात् जो सम्यग्दर्शन की पर्याय है, उसका विषय वह त्रिकाली ध्रुव है। उसका विषय, द्रव्य-गुण-पर्याय में जो व्याप्त था, वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। धन्नालालजी! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! ऐसे अपने अस्तित्व में — द्रव्य-गुण-पर्याय में — रहनेवाला होने पर भी, शुद्धनय अर्थात् निश्चयनय का विषय जो है, वह तो एकत्व एकरूप त्रिकाल वस्तु, वह उसका विषय है। गुण और पर्याय के भेद सम्यग्दर्शन के विषय और शुद्धनय के विषय में नहीं है। अरे! ऐसा अर्थ है। है?

शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है.... एकरूप त्रिकाल है। जिसमें गुणगुणी का भेद भी नहीं, वह सम्यग्दर्शन का विषय, ध्येय, वह शुद्धनय का विषय (है)। आहाहा! इसने कभी अन्दर विचार भी नहीं किया और ऐसा का ऐसा ऊपर-ऊपर से जाने या माने, वह कोई वस्तु नहीं है। इसके भाव में भासन आना चाहिए। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर से सिद्ध हुआ और लॉजिक से भी वह ऐसा ही सिद्ध होता है। समझ में आया? परन्तु यह गरज कहाँ है? आहा!

कहते है कि प्रभु आत्मा, शरीर-वाणी-कर्म आदि के मध्य में रहता भी हो परन्तु उनको स्पर्श ही नहीं करता और उन कर्म, शरीर ने आत्मा को स्पर्श ही नहीं किया। समझ में आया? आहाहा! यह तो तीसरी गाथा में कहा है। क्या (कहा है)? समयसार तीसरी, प्रत्येक द्रव्य-वस्तु.... यह बात तो जगत से अत्यन्त निराली है। प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय का चुम्बन करती है, अपना धर्म अर्थात् धारण की हुई शक्तियाँ और पर्याय को

चुम्बन करती है परन्तु परद्रव्य को एक स्वद्रव्य कभी चुम्बन, स्पर्श नहीं करता, नहीं छूता। आहाहा! समझ में आया?

कल रात्रि में कहा था नहीं? हम दान में पैसा हम देते है... (**श्रोता :** यह तो ठीक है।) **पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या ठीक है? पैसे को आत्मा छूता ही नहीं, हाथ को छूता ही नहीं और हाथ, पैसे को छूता नहीं और पैसा मैंने दिया, लो यह.... ये अज्ञानी का अत्यन्त भ्रम है। समझ में आया? क्योंकि परद्रव्य में तो व्याप्त होता नहीं। अपनी पर्याय से परद्रव्य को छूता नहीं, व्याप्त नहीं होता। तो परद्रव्य मैंने दिया, मैंने रखा, मैंने लिया — यह वस्तु में नहीं है। कौन दे और कौन ले? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! क्या हो? एक, पैसे की नोट हो या पैसा हो, चाँदी का रुपया हो, उसे यह हाथ है, यह स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं और पैसा जाता है, (वह) उसकी क्रिया से (क्रियावतीशक्ति से जाता है) और हाथ की पर्याय को — अंगुली को आत्मा स्पर्श नहीं करता क्योंकि अपना आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में-अपने धर्म में व्यापक है, पर का चुम्बन नहीं करता-शरीर की अंगुली का स्पर्श नहीं करता। पाटनीजी! ऐसा है। वहाँ कलकत्ता में नहीं मिलेगा, वहाँ कहीं ऐसी बात (नहीं मिलेगी) पैसा पैदा हो, यह तो कहते थे पहले, ऐसी बात। आहाहा! ऐसा मार्ग! कहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता तो अपना आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को स्पर्श करता है, यह तो कहा। समझ में आया?

अब उसमें से.... इतना निश्चित करने के बाद, उसमें सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन में तो पर्याय के भेद का निषेध होता है। प्रमाण में भेद और पर्याय का अस्तित्व साथ में रहता हैं।

श्रोता : यह कुछ समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? आहाहा! जो प्रमाण है, वह त्रिकाली को भी साथ में रखता है और पर्याय को भी साथ में रखता है कि (पर्याय) उसमें है, इस प्रकार प्रमाण अपने विषय में पर्याय को अपने में रखता है। क्या कहा?

श्रोता : प्रमाण के विषय में द्रव्य-पर्याय साथ में रहते हैं?

समाधान : दोनों है। है न परन्तु.... पर्याय उसकी है और उसमें है या पर की है

और पर में है ? अपने भाव में है, अपने क्षेत्र में है, अपने स्व काल में पर्याय है। आहाहाहा! ऐसा होने पर भी, सम्यग्दर्शन प्रगट करने को.... आहाहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी-धर्म की पहली दशा प्रगट करने को शुद्धनय का विषय बतलाते हैं कि वह त्रिकाल एकरूप है, वह शुद्धनय का विषय है-सम्यग्दर्शन का विषय वह है।

कहते है कि अपनी शक्तियाँ और वर्तमान दशा में वह (आत्मा) व्याप्त है, यह तो प्रमाण का विषय हुआ। यह चीज पर से भिन्न है और अपने से अभिन्न, यह गुण-पर्याय से भी है, उसमें ऐसा सिद्ध किया परन्तु वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। सम्यग्दर्शन और सम्यक्निश्चय शुद्धनय वह भावश्रुतज्ञान.... भावश्रुतज्ञान, द्रव्यश्रुत नहीं। भावश्रुतज्ञान का एक अवयव, जो व्यवहारनय (वह) उसका एक अवयव है, वह तो पर्याय, गुणभेद को भी जानता है, परन्तु उसका जो एक अवयव शुद्धनय है, वह त्रिकाली एकत्व को देखता है। समझ में आये उतना समझना बापू! यह मार्ग तो (अलौकिक है) कभी दरकार ही नहीं की। धर्म के नाम पर साधु हुआ, दिगम्बर हुआ, पञ्च महाव्रत लिये, सब मिथ्यात्वभाव है ये सब भाव.... आहाहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दर्शन का विषय अथवा शुद्धनय का विषय अर्थात् शुद्धनय जो ज्ञान का - श्रुतज्ञान का एक निश्चयनय का ज्ञान, उसका विषय एकत्व है। पूर्ण स्वरूप एकत्व की दृष्टि, वह शुद्धनय का विषय है। आहाहा! शशीभाई! ऐसा सूक्ष्म है।

यह तो हिन्दी हुआ। अब अभी यह तो हिन्दी (भाषी साधर्मी) आज आये हैं न। अब अभी हिन्दी चलेगा न ? आहाहा!

वह **पूर्ण ज्ञानघन है।** आहाहा! वस्तु जो द्रव्य है वह तो पूर्ण ज्ञानघन है। यहाँ तो मुझे अभी ऐसा तर्क भी उत्पन्न हुआ — पूर्णज्ञानघन है तो पूर्ण श्रद्धागुण, पूर्ण गुण श्रद्धा — सम्यग्दर्शन गुण, पर्याय नहीं। जो सम्यक् श्रद्धा गुण है, वह उससे परिपूर्ण है। समझ में आया ? फिर से.....

भगवान आत्मा जो द्रव्य-गुण-पर्याय से व्यापक प्रमाण का विषय बतलाया, उससे कोई आत्मा का लाभ नहीं हुआ। आत्मा का लाभ कब होता है कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, जो ध्रुव (है), वह भेद और पर्याय के विषय से भिन्न एकरूप त्रिकाल वस्तु है, पूर्ण ज्ञानघन

(वस्तु है), वह सम्यग्दर्शन का विषय अथवा शुद्धनय का विषय अर्थात् यह जो पूर्ण ज्ञानघन कहा, वही पूर्ण श्रद्धागुण पूर्ण है, ज्ञान से लो तो पूर्ण है, श्रद्धागुण से लो तो वह पूर्ण है, पर्याय नहीं। आहाहा! चारित्रगुण से लो तो (पूर्ण है, यहाँ) वीतरागी चारित्र पर्याय की बात नहीं है। चारित्रगुण से भी पूर्ण है। आनन्दगुण से लो तो आनन्दगुण से पूर्ण है। आहाहाहा! प्रभुत्वगुण से लो तो प्रभु प्रभुत्वगुण से पूर्ण है। आहाहाहा! ऐसा मार्ग! ऐसा प्रभु! पूर्ण ज्ञानघन, पूर्ण ज्ञानघन यह ज्ञान की प्रधानता से पूर्ण ज्ञानघन कहा। शेष दूसरी चीज से देखो तो पूर्ण चारित्रगुण अर्थात् शान्तगुण, अविकारी वीतरागभाव से परिपूर्ण है। श्रद्धागुण से लो तो त्रिकाली जो श्रद्धागुण है, उस श्रद्धागुण से परिपूर्ण है। आहाहा! ऐसा है।

पूर्ण ज्ञानघनमः, पूर्ण श्रद्धाघनमः, पूर्ण चारित्रघन, पूर्ण आनन्दघन। आहाहा! **'एवं तावान् अयं आत्मा' जितना सम्यग्दर्शन है, उतना ही आत्मा है।** आहाहाहा! एक तो यह बात कि जो वस्तु है, उसका जो श्रद्धागुण है, उस श्रद्धागुणमात्र आत्मा है, एक बात तो यह..... आहाहा! कहते है **जितना सम्यग्दर्शन उतना आत्मा....** एक बात यह। कि त्रिकाली दर्शन गुण है,.... जैसे पूर्ण ज्ञानघन कहा, वैसे पूर्ण दर्शनगुण; दर्शन अर्थात् श्रद्धा। पूर्ण श्रद्धागुण सम्पन्न है, उतना आत्मा है।

श्रोता : पर्याय का आत्मा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाद में पर्याय का.... आत्मा उसे लिया है। यह कहता हूँ न। पहले तो इस गुण को लिया। पूर्ण ज्ञानघन कहा न? वहाँ पूर्ण श्रद्धाघन, पूर्ण चारित्रघन — ऐसा लेना। अब यह पूर्ण ज्ञानघन... संस्कृत टीका में गुण लिया है, कलश टीका में क्या कहलाता है यह? यह कलश टीका, यह लो, एकत्व नित्यस्य आया, यही आया, राजमलजी की टीका, देखो! आत्मा! 'तावान् अयं आ अयं' यह जीव वस्तु 'तावान्' सम्यक्त्वगुणमात्र है — अपेक्षा से है। जैसे, यह पूर्ण ज्ञान, पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, वैसे श्रद्धा, सम्यक्त्वगुण, अन्दर पूर्ण है। समझ में आया या नहीं?

वस्तु-श्रद्धागुण है या नहीं त्रिकाल? ज्ञानगुण त्रिकाल है या नहीं? आनन्दगुण त्रिकाल है या नहीं? चारित्रगुण-वीतरागगुण त्रिकाल है या नहीं? तो प्रत्येक गुण से देखो तो उस परिपूर्ण गुण से परिपूर्ण है। राजमलजी! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

श्रोता : यह नयी बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ तो ऐसा कहना है कि पूर्ण सम्यक् श्रद्धागुण.... आत्मा पूर्ण है तो उसकी प्रतीति की, वह भी आत्मा है। यह क्यों कहा ? कि नव तत्त्व की श्रद्धा, वह आत्मा नहीं, वह अनात्मा है, भाई! नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह राग है; राग वह आत्मा नहीं, वह अनात्मा है। आहाहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण श्रद्धागुण सम्पन्न त्रिकाल वस्तु भगवान (है), उसकी प्रतीति-श्रद्धा, वह पर्याय आत्मा है। नव तत्त्व की श्रद्धा का राग, वह आत्मा नहीं, यहाँ यह बताना है। समझ में आया ? अरे... ! प्रभु का मार्ग तो अन्दर इतना गम्भीर लगता है ! आहाहा ! वीतराग की शैली बहुत अलौकिक बातें हैं। आहाहा ! और यह तो सन्तों-दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं, है नहीं, परन्तु उसे समझनेवाले सम्प्रदाय में पड़े, उन्हें भी इसका पता नहीं होता। आहाहा !

कहते है कि **'पूर्णज्ञानघन ऐवं' — जितना सम्यग्दर्शन है, उतना ही आत्मा है।** आहाहाहा ! अर्थात् जो पूर्णज्ञानघन, पूर्णश्रद्धाघन — ऐसी जो प्रतीति हुई, उसके ध्येय से जो प्रतीति हुई, वह प्रतीति आत्मा है। नव तत्त्व की प्रतीति हुई, वह आत्मा नहीं; वह तो राग है, वह अनात्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? इस कारण से त्रिकाली ज्ञायकभाव की प्रतीति-अन्दर ज्ञेय बनाकर, ज्ञान होकर प्रतीति हुई, वह आत्मा है, वह आत्मा की पर्याय, आत्मा है। राग, वह आत्मा नहीं; नव तत्त्व की श्रद्धा, वह आत्मा नहीं — ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! यह भेदवाली नव तत्त्व की (श्रद्धा, हाँ !)। मोक्षमार्गप्रकाशक में जो नव तत्त्व की श्रद्धा कही है, वह अभेद है, वह सम्यग्दर्शन (है)। **'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'** (ऐसा) जो उमास्वामी ने कहा, वह भी अभेद की दृष्टि, निश्चय सम्यग्दर्शन है, वह आत्मा का परिणाम है। आहाहाहा ! यहाँ तो वे नव तत्त्व भेद हैं न — जीव, अजीव, आस्त्रव आदि.... तो वे हैं — ऐसी श्रद्धा करने जाते हैं तो उसको विकल्प उत्पन्न होते हैं, राग आता है। वहाँ राग को व्यवहार श्रद्धा कहा गया है। आहाहा ! अत: वह आत्मा नहीं है। आहाहा !

भगवान आत्मा, अपने एकरूप पूर्ण स्वरूप की प्रतीति और ज्ञान करने से जो परिणाम हुआ, वह परिणाम आत्मा है। यहाँ परिणाम है, वह तो व्यवहारनय का विषय है.... समझ में आया ? परन्तु यहाँ जो परिणाम है, उसका विषय जो परिपूर्ण है, उस पर उसका

ध्येय है; इस कारण से उस परिणाम को आत्मा कहा; क्योंकि जितनी नव तत्त्वों की श्रद्धा और व्यवहारश्रद्धा है, वह सब व्यभिचार आता है, उसमें राग आता है। आहाहाहा! (यह बात) भावार्थ में कहेंगे। समझ में आया? और यह तो अव्यभिचारी भगवान आत्मा पूर्णज्ञानघन, पूर्ण आनन्दघन, सुख का वृन्द प्रभु अकेला सागर पूरा पर्वत एकरूप (है), उसका ज्ञान करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, आत्मा है।

श्रोता : पर्याय आत्मा कैसे हो जायेगी?

समाधान : कहा न कि उस राग को आत्मा नहीं कहा, इसलिए पर्याय को आत्मा कहा। व्यवहार की श्रद्धा, वह आत्मा नहीं है; इस कारण से उसको (सम्यग्दर्शन को) आत्मा कहा है। निर्विकल्प पर्याय हुई है। आहाहाहा! मार्ग तो अभी कहीं.... जगत् को कठिन पड़े ऐसा है। क्या हो भाई?

यह आत्मा क्यों कहा? दो प्रकार से कहा — एक तो श्रद्धागुण से परिपूर्ण प्रभु है, वह आत्मा; और श्रद्धागुण की परिपूर्ण स्वभाव की प्रतीति की, वह भी आत्मा है। यह राग नहीं और विकल्प नहीं; इसलिए उसे आत्मा कहा गया है। आहाहाहा! समझ में आया?

उतना ही आत्मा है, इसलिए आचार्य प्रार्थना करते हैं..... 'इमाम नव तत्त्व संतति मुकत्वा' देखो! आहाहाहा! आचार्य को तो आत्मा प्राप्त हुआ है परन्तु अभी विकल्प उत्पन्न होते हैं न, नव तत्त्व के, ज्ञान का ज्ञेयरूप से.... आहाहाहा! तो इस **नव तत्त्व की परिपाटी को छोड़कर.... संतति.... संतति।** यह जीव और यह अजीव; यह राग और यह पाप; यह आस्रव और बन्ध — ऐसे जो भेदों की परिपाटी को छोड़कर, आहाहा.... उसमें एकरूपता नहीं आयी। **परिपाटी को छोड़कर 'अयं आत्मा एक अस्तु नः',** **अयं** अर्थात् **यह**, यह, **अयं आत्मा, एक वस्तु 'न'** एक वस्तु 'न' अर्थात् हमें; 'न' का अर्थ यहाँ नकार नहीं। एक वस्तु 'न' एक वस्तु हमें हो, बस। आहाहा! लोग अभी बाहर में तूफान करते हैं, उन्हें अपना स्वरूप क्या है, या श्रद्धा क्या है, उसका विचार नहीं करते और यह व्यर्थ का झगड़ा खड़ा (करते हैं)। एकान्त है.... (ऐसा कहते हैं)। अरे भाई! सब जैसा है, वैसा है। सुन न अब! आहाहा!

अभी पहली सम्यग्दर्शन की दशा कैसे प्राप्त हो और उसका विषय क्या? और

प्राप्त होवे तो वह परिणाम कैसा है? उसमें आनन्द आता है और वह आत्मा का परिणाम है, क्योंकि राग नहीं, आस्रव नहीं, बन्ध का परिणाम नहीं; इसलिए वह मोक्ष का परिणाम है, मोक्ष के कारण का परिणाम है, वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि उसमें एक भाव-भाव नाम का गुण आत्मा में है। अतः जब द्रव्यस्वभाव की जहाँ एकत्वबुद्धि हुई तो उसमें एक भाव — भाव नाम का गुण है, तो उस कारण जो भाव — भाव नाम का गुण जो है, वह द्रव्य में भी है, गुण में भी है, और सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी भाव — भाव नाम का गुण का परिणमन आया! आहाहा! वह आत्मा के गुण का परिणमन हुआ। क्या कहा यह? यहाँ पर्याय को-सम्यग्दर्शन को आत्मा कहा न? आहाहाहा! कि आत्मा में एक आनन्द, ज्ञान और श्रद्धा नामक गुण जैसे त्रिकाल हैं, वैसे एक भाव — भाव नामक एक गुण त्रिकाल है। आहाहा! अरे! इसको पकड़ने से द्रव्य की एकत्वबुद्धि होने से वह भाव — भाव नामक जो गुण है, वह द्रव्य में भी है, गुण में है और पर्याय में भी भाव — भाव का-गुण का परिणमन आया; अतः वह गुण का — आत्मा का परिणमन आया। समझ में आया?

यह तो भाई! तीव्र पुरुषार्थ हो, जिसके लिए जागृतदशा चाहिए। आहाहा! बाकी प्रमादी और आलसियों का यह काम नहीं है। आहाहा...! आहाहा...! आहाहा...! **इतना ही आत्मा... इस नवतत्त्व की परिपाटी को छोड़कर 'अयं आत्मा एक वस्तु नः'...** अनेक परिपाटी जो है — विकल्प नव तत्त्व का, वह पर्याय में हो परन्तु हमारे आश्रय करनेयोग्य चीज तो एकरूप त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? यह सन्त ऐसा कहते हैं। ऐसा कहकर जगत् को बताते हैं। एकरूप त्रिकाल ज्ञायकभाव, वह एकरूप हमें प्राप्त हो। वर्तमान सम्यग्दर्शन में प्राप्त हुआ है, परन्तु अभी चारित्र में राग की कमजोरी है न, तो उसे छोड़कर हमें अकेला आत्मा प्राप्त हो, बस! आहाहाहा!

श्रोता : परिपाटी शब्द किसलिये आया?

समाधान : कहा न, है न क्रम — एक के बाद एक जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, मोक्ष — ऐसे प्रकार डाले न? ऐसी परिपाटी। यह एकडे एक, बिगड़े दो, तिगड़े तीन, नहीं बोलते — ऐसे अंकों की परिपाटी? वैसे ही यह नौ अंक आये न? जीव, अजीव, पुण्य,

पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष — यह परिपाटी है। आहाहा! यह मार्ग तो मार्ग! आहाहा! आचार्य प्रभु ऐसा कहते हैं... यह तो अमृतचन्द्राचार्य का कलश है। वैसे ही कुन्दकुन्दाचार्य — ऐसे सन्त, सभी सन्तों की (बात है) कि नव के विकल्प... अभी सम्यग्दर्शन हुआ, चारित्र हुआ, तथापि अभी जो विकल्प उठते हैं — भक्ति के, महाव्रतादि के विकल्प उठते हैं.... समझ में आया? तो उस भेद को छोड़कर, आहाहा! हमको तो अकेला आत्मा-मोक्ष की पर्यायवाला, केवलज्ञान की पर्यायवाला आत्मा हमें प्रगट हो।

श्रोता : इसमें चारित्र आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र तो अन्दर पहले आ गया है, परन्तु यह तो चारित्र की पूर्णता, केवलज्ञान की पूर्णता वह पर्याय आत्मा की, वह हमें हो। आहाहा! अरे...रे! इसे अनन्त काल हुआ, जैन के नाम से आया, ग्यारह अंग पड़ा शास्त्र परन्तु उसमें क्या हुआ? पढ़ा अवश्य परन्तु गुना नहीं। उसमें आता है न? 'वांचे पण नहीं करे विचार' — यह हमारे आता था। दलपतराम बड़े कवि थे, हमारी पाठशाला के समय 70-75 वर्ष पहले की बात है। दलपतराम कवि थे बड़े। क. द. डा., क. द. डा. अर्थात् कवि दलपतराम डाह्याभाई, उनके तीन नाम थे क. द. डा.। कवि दलपतराम, 75 वर्ष पहले की बात है, जब हमारी परीक्षा लेते (थे)। यहाँ तो परीक्षा में हमें तो उस समय कुछ लगता नहीं था, जो-जो परीक्षा देते, उसमें -परीक्षा में पहले नम्बर पास, क्योंकि वह तो साधारण पढ़ाई (थी) यह तो अन्दर.... आहाहा! परन्तु वे दलपतराम ऐसा कहते थे 'वांचे पण नहीं करे विचार, वे समझे नहीं सघलो सार' — पढ़े परन्तु उसका विचार नहीं करे कि यह क्या है, यह भाव क्या? यह वस्तु क्या? यह स्थिति क्या? आहाहा! और उस समय एक शब्द आता था 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी' (श्रोता : कब।) कब? 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी, मुझरो, मुझरो, मुझरो, मुझ रोग ले हरी' यह तो 75 वर्ष पहले की बात (है) उस समय शरीर की 13 वर्ष की उम्र थी न? आहाहा! कवि होशियार था, बहुत होशियार कवि था। हमने उन्हें नहीं देखा, उनके भाई को देखा है, उनका लड़का था, वह 60 वर्ष में पैदा हुआ था न यहाँ? यहाँ गुरुकुल में पैदा हुआ था, साठ वर्ष का। कवि नाथालाल के एक बड़े भाई थे बढ़वान में, वे व्याख्यान में आते थे, आते दलपतराम (के)।

जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ बड़े-बड़े लोग सुनने आते अवश्य है। (उन्हें) जँचे या न जँचे वह अलग बात। एक-दूसरे वहाँ — बढ़वान में नानालालजी हैं। दूसरे नहीं? वे ऐसा कहते थे — 'प्रभुता' आत्मा में प्रभु नाम का एक गुण है... यह भाई! उसे पता नहीं, आत्मा में ईश्वरपने नाम की शक्ति / गुण है। है न? सैंतालीस शक्तियाँ। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व — सातवाँ गुण है। सैंतालीस का वर्णन है, (उसमें) यह सातवाँ — तो प्रभुत्व-ईश्वर तेरा गुण है अन्दर; तो प्रभुता, प्रभुपना, तेरी तो खरी.... 'मुझरोग ले हरी' अज्ञान के रोग का नाश कर दे और तेरी प्रभुता प्रगट कर तो तेरी प्रभुता खरी। आहाहा! उसे तो दूसरी बात थी — ईश्वर की बातें न! ईश्वर कर्ता.... और मैं तो उसमें ऐसा (अर्थ) कर डालता। समझ में आया? आहाहा! इन नव तत्त्व के प्रकार-भेदों को छोड़कर '**यह आत्मा एक ही....**' एक ही, एकान्त करते हैं, देखो! '**एक अस्तु नः**' **एक ही हमें प्राप्त हो....** एकान्त नहीं करते? पर्याय भी हो, भेद भी हो तो अनेकान्त होता है — ऐसा नहीं है। यह ऐसा एक आत्मा का भान हुआ तब पर्याय का ज्ञान होते ही (उसे) अनेकान्त कहा जाता है। सम्यक्ज्ञान हुआ, अकेले चैतन्य का एक सम्यग्ज्ञान-एकान्त अपने में हुआ, तब वह ज्ञान, स्व-पर प्रकाशक होने से पर्याय और राग है, उसका ज्ञान करता है — यह अनेकान्त है। समझ में आया? आहाहा! यह टीका हुई।

भावार्थ : सर्व स्वाभाविक तथा नैमित्तिक अपनी अवस्थारूप.... क्या कहते हैं? आत्मा जो अनन्त गुण — जो स्वाभाविक हैं और उनकी अवस्था जो स्वाभाविक हो, और **नैमित्तिक**-कर्म के निमित्त के संग से जो विकृत अवस्था हो, अपने में अपने से **नैमित्तिक अपनी अवस्थारूप गुण पर्याय भेदों में व्यापनेवाला....** आहाहा! अपनी शक्ति अर्थात् त्रिकाल गुण और वर्तमान पर्याय — विकृत-अविकृत। नैमित्तिक अर्थात् कर्म के निमित्त के संग से उत्पन्न हुआ जो अपने में अपने से, ऐसी विकारी पर्याय, अविकारी पर्याय और अविकारी गुणों में **व्यापनेवाला यह आत्मा,....** उनमें रहनेवाला यह आत्मा.... आहाहा! **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है....** आहाहाहा! **शुद्धनय से ज्ञायकमात्र एक-आकार दिखलाया गया है.....** 'एक-आकार है' एक-आकार अर्थात् एक स्वरूप।

ज्ञायक एकरूप त्रिकाल है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। वहाँ से धर्म

की पहली शुरुआत होती है। समझ में आया? आहाहा! **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है,** एक-आकार दिखलाया गया है। **उसे सर्व अन्य द्रव्यों और अन्य द्रव्यों के भावों से अलग देखना.....** आहाहा! **श्रद्धान करना....** त्रिकाली ज्ञायकभाव एकरूप स्वभाव का ज्ञान करना, उसकी श्रद्धा करना, आहाहा! उसे देखना **सो नियम से सम्यग्दर्शन है।....** निश्चय से सत्यदर्शन / सम्यग्दर्शन उसे कहा जाता है।

व्यवहारनय.... अब दूसरा नय। **आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर....** आत्मा को गुण के भेद और पर्याय के भेद और विकार की अवस्था के भेद.... आहाहा! **आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर सम्यग्दर्शन को अनेक भेदरूप कहता है....** व्यवहार सम्यग्दर्शन के अनेक भेद — देव-गुरु की श्रद्धा करो, शास्त्र की श्रद्धा करो और नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा करो, आहाहा! आस्रव की आस्रवरूप श्रद्धा करो — ऐसे व्यवहार की श्रद्धा भेदरूप कहता है, **वहाँ व्यभिचार (दोष) आता है....** वहाँ सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

व्यवहारनय वस्तु को एकरूप छोड़कर अनेकरूप दिखाता है और अनेकरूप की श्रद्धा करना, वह दोष है, वह सम्यग्दर्शन नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह तो पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है। वह पहले तो आचार्य का था। अब तो गृहस्थाश्रम में रहनेवाले पण्डित (जी) ने लिखा है। है? **(व्यवहारनय आत्मा को अनेक) भेदरूप कहकर सम्यग्दर्शन को अनेक भेदरूप कहता है....** देव को मानो, भगवान देव, हाँ! गुरु को मानो, शास्त्र को मानो, नव तत्त्व को मानो — ऐसे भेद को-अनेक को मानो (ऐसा कहता है) **वहाँ व्यभिचार (दोष) आता है, नियम नहीं रहता।.....** उसमें निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता, उसमें एकरूपता नहीं होती। आहा! समझ में आया?

शुद्धनय की सीमा तक पहुँचने पर.... आहाहा! स्वरूप की एकता का नय, जो एकता बतलाता है, उसकी सीमा अर्थात् मर्यादा। शुद्धनय की सीमा एकरूप को बताना है, निश्चयनय की मर्यादा एकरूप को बतलाती है। आहाहा! अब यह एक व्यक्ति कहता है कि यह समयसार मैं पन्द्रह दिन में पढ़ गया.... तो तुम समयसार की बहुत महिमा करते हो। बापू! इसकी एक-एक पंक्ति समझना, प्रभु! यह तो मन्त्र है। आहाहा! आहाहा! लो!

आ गये डालचन्दजी ! ठीक, समझ में आया ? आहाहा ! **शुद्धनय की सीमा तक पहुँचने पर...** आहाहा ! एक ज्ञायकभाव पूर्ण बतानेवाली शुद्धनय की मर्यादा देखने से, आहाहा ! **व्यभिचार नहीं रहता....** अनेकता में श्रद्धा करना, वह वहाँ नहीं रहता। एकरूप की श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन रहता है, वह अव्यभिचारी सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! **इसलिए नियमरूप है....** यथार्थ निश्चयरूप है। त्रिकाल एकरूप परमानन्द प्रभु का ज्ञान करके प्रतीति करना, अनुभव करके (प्रतीति करना), उसमें दोष नहीं रहता, व्यभिचार नहीं रहता, अनेकता नहीं रहती, उसमें दृष्टि में एकरूपता आती है, वह नियम से है।

शुद्धनय का विषयभूत आत्मा पूर्ण ज्ञानघन है.... आहाहा ! यह भगवान तो पूर्ण ज्ञानघन है, पूर्ण श्रद्धाघन है, आनन्दघन है, ज्ञान की प्रधानता से कथन है न ? तो कैसा है ज्ञानघन ? **सर्व लोकालोक को जाननेवाला ज्ञानस्वरूप है.....** उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि इस लोकालोक को पर्याय में जानता है। उसकी शक्ति लोकालोक को जानने की शक्ति उसमें हैं। समझ में आया ? हरिभाई ! पता है ? इनके बापू थे, (वे) ऐसा कहते थे कि यह तो लोकालोक को जाने, फिर सम्यग्दर्शन होता है। पता है न ? वे बीमार थे और कमरे पर गये थे न, मोरबी ? यह तो लोकालोक का जानना, यह तो उसकी-गुण की शक्ति है, ज्ञान का स्वभाव लोकालोक को जानने का, उसका स्वभाव है। पर्याय में लोकालोक को जाने, फिर सम्यग्दर्शन हो — ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया ? ऐसा है। बहुत परिचय में आये होते हैं न, बहुत-बहुत, आहाहा ! आये होते हैं बहुत-बहुत।

श्रोता : परम अवगाढ़ सम्यग्दर्शन तो केवलज्ञान हो तब होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - वह दर्शन तो दर्शन ही है। यह तो ज्ञान की अपेक्षा से वहाँ परम अवगाढ़ कहा। क्षायिक समकित हुआ तो क्षायिक समकित वह पूर्ण ही हुआ। वह तो जब ज्ञान हुआ तो ज्ञान की अपेक्षा से परम अवगाढ़ कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! क्षायिक सम्यक्त्व हुआ तो अब अन्दर एक अंश भी कमी नहीं है। आहाहा ! वह क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान में साथ में आ जाएगा। श्रेणिक राजा गृहस्थाश्रम में था, हजारों रानियाँ थीं, हजारों राजा चँवर ढोलते थे, क्षायिक सम्यक्त्व था। आहाहा ! वह बाहर की चीज अन्दर में कहाँ बाधक है ? अन्दर भान हुआ तो क्षायिक समकिती। आहाहा ! समकित में

कुछ भी हीनता-न्यूनता नहीं है। आहाहा! और वह क्षायिक समकित लेकर नरक में गये और वह समकित लेकर निकलेंगे और तीर्थंकर होंगे, वह अन्तिम भव। समझ में आया? पहले तीर्थंकर होंगे - महापद्मदेव। आहाहा!

एकरूप त्रिकाल ज्ञायक की प्रतीति ज्ञान करके, हो, यह कहीं कोई साधारण बात है बापू! आहाहा! लक्ष्य में, पूर्ण एकरूप वस्तु लेना वह क्या चीज है! आहाहाहा! ज्ञान की वर्तमान पर्याय के उपयोग में पूर्ण चीज को लेना। उपयोग में! आहाहा! समझ में आया? वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! पहले ही विवाद.... अभी श्रद्धा और सम्यग्दर्शन (नहीं).... इसके बिना व्रत और तप ले लिये, हो गया साधु। एक बिना का शून्य। आहाहा! श्रेणिक राजा गृहस्थाश्रम में क्षायिक समकिती परन्तु मोक्षमार्ग में। आहाहा! क्योंकि पूर्णज्ञानघन का ज्ञान और निर्विकल्प प्रतीति-अप्रतिहत, उस सम्यग्दर्शन से आगे बढ़कर चारित्र होगा, और आगे बढ़कर केवलज्ञान होगा। अतः उसमें सम्यग्दर्शन धारावाही रहेगा। आहाहा!

योगसार में यह आता है (कि) गृहस्थाश्रम में हेयाहेय का ज्ञान.... आता है? 'गृह काम करते हुए हेयाहेय का ज्ञान।' गृहस्थाश्रम का काम करते हुए, यह तो बताया है। (वस्तुतः) काम होता है, उसे जानते हैं। गृह काम करते हुए हेयाहेय का ज्ञान। हेय अर्थात् भेद आदि, विकल्प आदि हेय है और अभेद अखण्डानन्द प्रभु उपादेय अर्थात् अहेय है। अहेय अर्थात् उपादेय है। आहाहा! चक्रवर्ती के राज्य में रहने पर भी यह हो सकता है। आहाहा! समझ में आया? योगसार में आता है न? दो जगह आता है। मुनिजन हो, आत्मज्ञानी अनुभवी हो या गृहस्थी हो, आत्मा का अनुभव कर सकते हैं। आहाहा! और नियमसार में तो वहाँ तक कहा है कि गृहस्थाश्रम में श्रावक है, वह भी निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, और निश्चय चारित्र की भक्ति करते हैं अर्थात् सेवा करते हैं तीनों (की) नियमसार में है। आहाहा!

तब एक जगह ऐसा कहा कि श्रावक को गृहस्थाश्रम में शुद्ध उपयोग नहीं होता — ऐसा टीका में कहा है। है? इसका अर्थ क्या? जो मुनि को शुद्ध उपयोग होता है — ऐसा शुद्ध उपयोग उसमें नहीं होता। समझ में आया? शुद्ध उपयोग न हो तो शुद्ध उपयोग में तो सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! और फिर बाद में ही किसी को पन्द्रह दिन, महीने में; किसी

को तुरन्त ही शुद्ध उपयोग होता है। आहाहा! किसी को पन्द्रह दिन में, महीने में हो जाता है शुद्ध उपयोग समकिती को.....। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव)